विद्या और विवेक में अन्तर

डॉ. राजनीति झा*

विद्या को विवाद-मूलक कहा गया है- विद्या विवादाय धनं मदाय इत्यादि। अतः पुस्तकों की पढ़ी हुई विद्या तब तक विमुक्ति नहीं प्रदान कर सकती है, जबतक कि उस व्यक्ति में विवेक न आये। अतः वहीं विद्या श्रेयस्कर है जो विवेक से युक्त हो, क्योंकि वहीं विद्या विद्या होती है- सा विद्या या विमुक्तये। लेखक ने यहाँ विद्या एवं विवेक के सूक्ष्म अन्तर को महाभारत, पंचतन्त्र एवं अन्य भारतीय वाङ्मय के उद्धरणों से समझाने का प्रयत्न किया है।

विद्या और बुद्धि या विवेक के सूक्ष्म अन्तर को बतानेवाली एक उत्तम कथा पंचतंत्र के पाँचवें तन्त्र में इस प्रकार है- किसी नगर में चार ब्राह्मण पुत्र निवास करते थे। उनमें से तीन शास्त्रज्ञ विद्वान्, मगर एक अनपढ़ था। एकबार तीनों शास्त्रज्ञों ने किसी राजा के दरबार में जाकर अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने का निश्चय किया ताकि राजा से वे उपहार प्राप्त कर सकें। उनमें से सबसे बड़े ने कहा कि अनपढ़ भाई को राजा के दरबार में ले जाने से कोई लाभ नहीं उलटे वह बिना कुछ किए उपहारों का हिस्सेदार बन जायगा, इसलिए उसे साथ ले जाना बेकार है। दूसरे भाई ने उसका समर्थन किया पर तीसरे भाई ने इस विचार से अपनी असहमति जताई और उसको भी साथ ले चलने पर अड़ गया। निदान उसे भी साथ ले लिया गया।

रास्ते में एक जंगल था, जिसमें कुछ हड्डियाँ बिखड़ी पड़ी दिखी जो किसी पशु की थी। उन लोगों ने मृत जीव को जीवित करने की विद्या पढ़ी थी। इसलिए उनके मन में विचार आया कि क्यों न इन हड्डियों को इकट्ठा कर उसपर अपनी विद्या की परीक्षा ली जाय। यह सोचकर एक भाई ने उन हड्डियों को इकट्ठा कर उसका ढ़ाँचा तैयार किया। दूसरे ने अपनी विद्या के बल पर उसमें रक्त, मांस और चर्म का सृजन किया। पर जब तीसरे ने अपनी विद्या आजमाने के लिए जीवनदायिनी विद्या का प्रयोग करना चाहा तो चौथे भाई ने जो अनपढ़ था उसे रोकते हुए कहा कि यह ढ़ाँचा सिंह का है इसलिए यदि इसमें जान डालोगे तो यह जीवित होकर हम चारों भाई को खा जायगा। इसलिए इसे जीवित मत करो। पर तीसरा भाई अपनी बात पर यह कहते हुए अड़ा रहा कि तब तो मेरी विद्या अपरीक्षित ही रह जायगी। किसी दूसरे भाई ने भी उसे मना नहीं किया। इसपर छोटे भाई ने, जो अनपढ़ था, उससे थोड़ी देर रूक जाने का आग्रह किया और खुद पेड़ पर जा चढ़ा। फिर वही हुआ जो होना था। प्राणवान् होते ही सिंह ने उन तीनों को अपना भक्ष्य बना लिया। केवल वही भाई बचा रह गया जो था तो अनपढ़ मगर विवेकवान् था, जिसमें व्यवहारिक बुद्धि थी। किसी के लिए भी लिखी गई यह सिंहकारक कथा विद्या और बुद्धि या विवेक के सूक्ष्म अन्तर को बड़ी सहजता से प्रकट करती है।

वस्तुतः पुस्तकीय ज्ञान में कोई कितना भी सम्पन्न क्यों न हो लेकिन यदि उसमें व्यवहारिक ज्ञान नहीं पैदा हुआ तो वह मूर्ख की तरह उपहासास्पद ही है। यह व्यवहारिक ज्ञान चिंतन और व्यक्तिगत अनुभव से प्राप्त होता है। विद्या उसकी मात्र सहायिका है। कहा भी है कि शास्त्रें में कुशल होने पर भी व्यवहारिक ज्ञान या बुद्धि-विवेक से रहित व्यक्ति उसी प्रकार उपहास का पात्र होता है जिस प्रकार बेशकीमती वस्त्रें और आभूषणों से सुसज्जित मूर्ख व्यक्ति (अपने गँवारूपन के कारण) उपहास का पात्र होता है।

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिता।
सर्वे ते हास्यता यान्ति यथा मूर्खाः सुशोभिता।।

*पूर्व सहसंपादक, 'धर्मायण'

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बुद्धि विद्या से बड़ी होती है। विद्या से बुद्धि श्रेष्ठ है यह अनुभवी लोगों का सर्वसम्मत निर्णय है। जिसको बुद्धि है वही बलवान् है निर्बुद्धि को बल कहाँ? ''बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलः'' बुद्धिहीनों की हीनावस्था सुनिश्चित है, क्योंकि सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान से दुनिया में काम नहीं चलता, पग-पग पर विवेक की जरूरत होती है। जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को दूर करने में केवल सूर्य ही समर्थ होता है उसी प्रकार मनुष्यों की विपत्ति को दूर करने में केवल उसका विवेक ही सक्षम होता है।

विवेकः व्यसनं चैव पुंसां क्षपयितुं क्षमः।
अपहर्तुं समर्थो{सौ रविरेव निशातमः।।

असल चीज तो विवेक है जिसके बिना विद्या कभी संकट में भी डाल सकती है। विवेकहीन विद्वान् तो वस्तुतः पठित मूर्ख होता है- पढ़ा हुआ तोता, जो केवल रटी हुई बात दुहरा सकता है।

इन्हीं कारणों से महाभारत में भी बुद्धि को धर्म कहा है-

हे राजन! देवाधिदेव परमेष्ठी ब्रह्म ने, अहिंसा, सत्य, अक्रोध (प्रेम) तपस्या (विवेकपूर्ण शुभ श्रम) दान (त्याग वृत्ति) दम (मन एवं इन्द्रियों का संयम) मति (बुद्धि, ज्ञान, विवेक व्यवहारिक बुद्धि) अनसूया (किसी के दोष न देखना) अमात्सर्य (किसी से डाह न करना) अनीर्ष्या (जलन का अभाव) और शील (नैतिक एवं विनम्रतापूर्ण आचार-व्यवहार) को धर्म कहा है।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्तपो दानं दमो मतिः।
अनसूयाव्यमात्सर्यमनीर्ष्या शील मेव च।
एष धर्मः कुरूश्रेष्ठ कथितः परमेष्ठिना।। (शान्ति पर्व- 108/12)

यही बात मनुस्मृति के अधोलिखित श्लोक से भी ध्वनित होती है कि धर्म के शुद्ध स्वरूप को जानने की इच्छा रखनेवाले को प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान और विविध शास्त्रें का ज्ञान चाहिए।

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्म शुद्धिमभीप्सता।। (12/105)

प्रत्यक्ष प्रमाण का अर्थ है वह जो इन चर्मचक्षुओं से देखा जा सके। अनुमान का अर्थ है जो अन्तश्चक्षु यानी विवेक से जाना जा सके और शास्त्रज्ञान का अर्थ है पुस्तकीय जानकारी अर्थात् विद्या। धर्माधर्म या करणीय-अकरणीय का निर्णय इन तीनों के आधार पर ही हो सकता है। स्पष्टतः यह श्लोक विद्या-विवेक और तर्क-वितर्क की महत्ता को दर्शाता है।

यही बात महाभारत भी कहता है जब वह देवराज इन्द्र के हवाले से देवगुरु वृहस्पति के इस कथन का उल्लेख करता है कि केवल शास्त्र वचनों अथवा केवल बुद्धि (तर्क-वितर्क) द्वारा धर्माधर्म का सम्यक ज्ञान नहीं होता अपितु दोनों के समुच्चय से होता है।

न धर्मवचनं वाचा नैव बुद्ध्येति न श्रुतम्।
इति बार्हस्पतं ज्ञानं प्रोवाच मघवा स्वयं।। (शान्ति पर्व-142/37)

शान्तिपर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर से भी यही बात कही कि धर्म बड़ा गहन विषय है, उसका सम्यक् बोध शास्त्र-वचनों और बुद्धि का प्रयोग कर विवेचन और विश्लेषण से होता है।

धर्मोह्यणीयान् वचनाद् बुद्धिश्च भरतर्षभः। (130/6)

स्त्री पर्व में यही बात युधिष्ठिर ने अर्जुन से कही है कि धर्म के इस गूढ़ स्वरूप का ज्ञान बुद्धि से ही हो सकता है।

यदिदं धर्म गहनं बुद्यया समनुगम्यते।। (5/1)

महाभारत में धर्मव्यास कहते हैं कि जो न्याययुक्त होता है वही धर्म है। अनाचार का नाम ही अधर्म है। ऐसा शिष्ट पुरुषों का कहना है।

आरभ्भोन्याययुक्तो यः स हि धर्म इति स्मृतः।
अनाचारस्त्वधर्मेति एतच्छिष्टानुशासनम्।। (वनपर्व 207/77)

धर्म की यह परिभाषा भी बुद्धि और विवेक की आवश्यकता का प्रतिपादन करती है क्योंकि न्याय क्या है? और अन्याय क्या है? यह तो बुद्धि विवेक से ही जाना जा सकता है।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि धर्माधर्म का निर्णय अर्थात् किसी समय और किसी परिस्थिति में क्या करणीय है और क्या अकरणीय है इसका निर्णय बुद्धि का प्रयोग किये बिना हो ही नहीं सकता। हमारी संस्कृति और धर्मग्रन्थों में विवेक अर्थात् तर्क द्वारा निर्णय पर पहुँचने को कितना महत्व दिया गया है वह अधोलिखित उद्धरणों से पूरी तरह स्पष्ट होता है।

वेदों के छः अंगों में यास्क मुनिकृत निरुक्त का प्रमुख स्थान है। शब्दों के विश्लेषण द्वारा वेदों के मन्त्रें का अर्थ जानने में सहायता देना इसका मुख्य विषय है। यह निरूक्त तर्क की महत्ता साफ शब्दों में घोषित करता है। उसके अनुसार इहलोक से जब ऋषि परम्परा समाप्त होने लगी तो मनुष्यों ने देवताओं से पूछा कि अब हमारे लिए कौन ऋषि होंगे? देवताओं ने उत्तर दिया अब तर्क ही ऋषि का स्थान लेगा। विचारशील विद्वान् तर्क द्वारा जिस निर्णय पर पहुँचता है उसे आर्ष वचन या ऋषि-वचन ही समझना चाहिए।

मनुष्या वा ऋषित्क्रामप्सु देवान्ब्रूवन्को न ऋषिर्भविष्य तीति।
तेभ्य एतं तर्कमृषि प्रायच्छन् यदेव किंचानूचानोऽभ्यूहति आर्षतदवति।।13।12

जन साधारण को यह उक्ति सहजता से याद रहे इसलिए इस श्लोक को अपने कवि ने अद्योलिखित रूप से छन्दोबद्ध किया है।

ऋषि परम्परा वसुन्धरा से लगी खत्म जब होने
पूछा मानव ने देवों से कौन ऋषि अब होंगे?
उत्तर मिला तर्क लेगा अब आगे ऋषि स्थान
युक्ति युक्त जो भी होता है वह ऋषि वचन समान
ऊहापोह के बाद करे विद्वानों ने जो निश्चय।
आर्ष वचन ऋषि वचन वही है यह देवों का निर्णय।।

शास्त्रें में कोई बात लिखी है इसीलिए उसे मान लेना ठीक नहीं, क्योंकि केवल शास्त्र के द्वारा कर्तव्याकर्तव्य (धर्माधर्म) का निर्णय नहीं हो सकता। शास्त्र-वचनों को भी विवेक अर्थात् व्यावहारिक बुद्धि द्वारा परखकर निर्णय लेना चाहिए। युक्तिहीन विचार अर्थात् तर्क की कसौटी पर खड़ा न उतरनेवाले वचन तो धर्म की क्षति ही करते हैं।

केवलम् शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्योहि विनिर्णयः।
युक्तिहीनं विचारेतत्तु धर्मं हानि प्रजायते।। (महाभारत)

तर्क-वितर्क, वाद-विवाद से असलियत उभरकर सामने आती है। 'वादे-वादे जायते तत्त्व बोधः इस लोकोक्ति का यही अर्थ है।

हमारी संस्कृति में योगवासिष्ठ का कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। उसमें महर्षि वसिष्ठ ने राम को उपदेश दिया है। यह ग्रन्थ भी तर्क-वितर्क की महत्ता का बखान करते हुए कहता है कि सामान्य व्यक्ति द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी यदि वह युक्तियुक्त (तर्क संगत) बात कहता है तो ग्रहण करने योग्य है, इसके विपरीत ऋषिप्रोक्त शास्त्र भी यदि तर्कहीन बात कहता है तो वह त्यागने योग्य है। मनुष्य को न्याय्य (नैतिक, उपयोगी, हितकर) बात ही माननी चाहिए। तर्कसंगत बात यदि कोई बच्चा भी कहे तो मान लेना चाहिए, क्योंकि वह उपयोगी होता है। इसके विपरीत स्वयं ब्रह्मा भी कोई तर्कहीन बात कहें तो उसे तिनके की तरह तुच्छ समझकर त्याग देना चाहिए।

अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं सूक्तिबोधकम्।
अन्यत्त्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना।।
युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
अन्यतृणमिव व्याज्यप्युक्तं पद्म जन्मना।। (2/18/23)

अपने कवि के छन्द में-

साधारण भी व्यक्ति अगर कुछ युक्तियुक्त कहता है,
ग्रहण करो, उसमें निश्चय ही सारतत्त्व रहता है।
तर्कविरूद्ध वचन यदि कोई आर्ष पुरुष ही कहता,
त्यागो उसे न उसमें कोई सारतत्त्व है रहता।
बालक ही यदि युक्त युक्त कुछ कहता है तो ले लो,
ब्रह्मा भी यदि तर्कहीन कुछ कहते त्याग उसे दो।।

सुभाषितरत्न भाण्डागार में भी इस आशय का अधोलिखित श्लोक है, जिसका आशय है कि बालक क्या तोता भी यदि युक्ति संगत एवं तर्कपूर्ण बात कहे तो उसे आत्मसात कर लेना चाहिए। इसके विपरीत वृद्ध अथवा विद्वान् भी असंगत और तर्कहीन बात कहे तो उसे नहीं मानना चाहिए।

युक्तियुक्तं वचो ग्राह्यं बालादपि शुकादपि।
अयौक्तिकं तु सन्त्याज्यं अप्युक्तं पद्मयोनिना।।

भगवान् गौतम बुद्ध, हजरत मुहम्मद गाँधी आदि आर्ष पुरुषों ने भी बुद्धि और विवेक को ही धर्म का निर्णायक कहा है। भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था कि किसी बात को इसलिए नहीं मान लो क्योंकि वह किसी आर्ष ग्रन्थ में लिखा है, इसलिए भी नहीं मान लो क्योंकि वह किसी आर्ष-पुरुष के द्वारा कथित है, इसलिए भी नहीं मान लो, क्योंकि वह परम्परा से चली आ रही है, इसलिए भी नहीं मान लो क्योंकि तुम्हारे गुरु ने वैसा कहा है, बल्कि बुद्धि-विवेक की कसौटी पर कसने के बाद यदि वह खरी उतरे तभी उसे मानो।

भगवान् बुद्ध के उपर्युक्त वचन से मिलती-जुलती बात महाभारत में भी तुलाधार वैश्य ने ऋषि जाजलि से कही है। तुलाधार कहते हैं- जाजले! केवल इसलिए कि अमुक कर्म पूर्वजों द्वारा किया गया है ऐसा नहीं। किसी कर्म का हेतु क्या है, या परिणाम क्या है उसपर विचार करके ही तुम्हें किसी धर्म को स्वीकार करना चाहिए। लोगों ने क्या किया है या क्या कर रहे हैं यह जानकर उसका अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए।

केवलाचरित्वात् तु निपुणो नावबुद्ध्यसे।
कारणाद् धर्ममन्विच्छेन्न लोकचरितं चरेत्।।
यो हन्याद् यश्च मां स्तौति जाजले।। (महा. शा. 262/525)

हजरत मुहम्मद ने मुआज को यमन का सूबेदार बनाकर भेजा। जब सूबेदार चलने लगा, हजरत ने पूछा- वहाँ की समस्याओं का समाधान कैसे करोगे? मुआज ने कहा- कुरान के आधार पर। हजरत ने पूछा- अगर कुरान के साथ समस्याओं का समाधान नहीं बैठा तो? मुआज ने कहा- पैगम्बर की मिसाल सामने रखकर। हजरत ने पूछा- यदि वह भी ठीक न बैठा तब? मुआज ने कहा- अपनी अक्ल और इन्साफ को आगे रखकर काम करूँगा। हजरत मुहम्मद ने अन्तिम तरीके को ठीक बताते हुए कहा कि दूसरों की कही बात को सही नहीं माननी चाहिए। अक्ल का इस्तेमाल करने पर जो सही जँचे वही करना चाहिए।

इस वार्ता से दो निष्कर्ष निकलते हैं- एक यह कि कोई भी पुस्तक जीवन की सारी समस्याओं का समाधान करने में

समर्थ नहीं होती है, और दूसरा यह कि आदमी का असली गुरु उसकी अपनी बुद्धि है। किसी समस्या का सही समाधान अपनी बुद्धि का प्रयोग करके ही ढूँढ़ा जा सकता है। पुस्तकों के शब्द तो बेजान होते हैं, उसका समयानुकूल अर्थ बुद्धि के प्रयोग से ही निकलता है।

आधुनिक काल में सन्त राजनीतिज्ञ राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी इसी बात पर जोर दिया है कि धर्माधर्म का निर्णय बुद्धि-विवेक की कसौटी पर कसकर ही किया जाय। उन्हीं के शब्दों में 'शास्त्र के नाम पर चलनेवाली बहुत-सी बातें शास्त्रीय नहीं होती। इसलिए शास्त्र की पुस्तकें पढ़ते वक्त बहुत सावधानी रखनी चाहिए। शास्त्र का प्रमाण जब बुद्धि के पास पर खड़ा होता तब वह कमजोरों के लिए मददगार साबित होता है और उन्हें ऊँचा उठाता है। लेकिन जब वह आत्मा की गहराई में से आनेवाली पुकार से पवित्र हुई बुद्धि के तकाजे पूरे करने से इन्कार करता है और उसकी जगह ही रोक लेना चाहता है तब वह इंसान को नीचे गिराता है। स्मृतियों में ऐसे कितने ही नियम बताए जा सकते हैं जो लाजिमी तो क्या, अमल करने लायक भी नहीं होते।

जो कुछ संस्कृत में लिखा है उन सबको धर्मशास्त्र नहीं मानना चाहिए। इसी तरह यह भी नहीं मानना चाहिए कि धर्मशास्त्र समझे जानेवाले मनुस्मृति वगैरह प्रमाणिक ग्रन्थों में जो कुछ आजकल हम पढ़ते है। वह सब मूल लेखक का ही लिखा है, या ऐसा हो तो भी वह सब आज अक्षरशः मानने लायक है।

कुछ सिद्धान्त सनातन है। लेकिन यह समझने की कोई वजह नहीं कि उन सिद्धान्तों पर जो-जो आचार जिस-जिस जमाने के लिए बनाए गए थे वे सभी दूसरे जमाने में भी सच ही रहेंगे। स्थान, काल और परिस्थिति के कारण आचार बदलते हैं। जहाँ बुद्धि लगायी जा सकती है वहाँ श्रद्धा की गुंजाइश नहीं होती, जो चीज बुद्धि से परे है, उसी के लिए श्रद्धा काम की है। जैसे सभी पुरानी बातों को न मानने वाले भूल करते हैं वैसे ही उन्हें सच्ची माननेवाले भी गलती करते हैं। पुरानी हो या नई सभी चीजों को बुद्धि की कसौटी पर चढ़ाना चाहिए और जो चीज उस पर न चढ़ सके उसे बिलकुल छोड़ देना चाहिए। शास्त्रें के किसी भी ऐसे अर्थ को नहीं मानना चाहिए जो तर्क और नैतिकता के प्रतिकूल हो।

****

शंकराचार्य का समन्वयवाद

"आगा खाँ के महल में बन्द बापू उन दिनों हिन्दुधर्म के गहन अध्ययन और मनन में लगे थे। उनकी सेवा-टहल के लिए रखी गयी डा० सुशीला नैयर ने एक दिन उनसे पूछा- क्या आप मानते हैं शंकराचार्य ने भारत से बौद्ध धर्म का उच्चाटन किया और यह काम अच्छा नहीं हुआ?"

गाँधीजी ने जो कहा, वह आज भी एक आदर्श उत्तर है, उनके लिए जो जगद्गुरु को संकीर्ण, परधर्मद्वेषी और जाने क्या-क्या बताकर उनकी महत्ता चौखटबंद करने के मूर्ख प्रयासों में समय नष्ट कर रहे हैं।

गाँधीजी ने कहा था- "सुशीला तेरी बात बिल्कुल उलटी है। आचार्यजी ने बौद्ध धर्म को फेंका कहाँ? उन्होंने तो उसका सार-भाग भर लिया। उन्हीं की बदौलत आज बौद्धधर्म जितना भारत में है उतना न चीन में है, न जापान, वर्मा न श्रीलंका में। गौतम बुद्ध का यदि आज पुनर्जन्म हो, तो वे खुद कहेंगे कि बौद्धधर्म का सत्त्व तो भारत में ही है, शेष तो सब भूसा है।"

(डा. एस.एन.पी.सिन्हा के आलेख "सांस्कृतिक समन्वयाचार्य : शंकराचार्य" से)